P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-7* (Part-2) March- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

महारथी ''श्रीकर्णचरितामृतम्'' का महाकाव्यत्व

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में पं. श्री गुलाबचन्द्र चुलेट 'पाटलेन्दु' द्वारा प्रणीत महारथी 'श्रीकर्णचरितामृतम्' महाकाव्य को सर्गबद्धता, नायकत्व, रस, नाटकसन्धियाँ, कथावस्तु, मंगलाचरण, छन्दोविधान जैसे शास्त्रीय लक्षणों पर घटित करते हुए उसके महाकाव्यत्व को सिद्ध किया गया है।

मुख्य शब्द : मद्रकटक, सूर्यसायुज्यम्, कान्दर्पिकम्, गगनमणि, मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्ष, उपसंहृति, उत्पाद्य, प्रख्यात, मिश्र, सूतज, हव्यपायस, नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक, मालिनी, काम्पिल्य।

परमानन्द शर्मा
शोधच्छात्र,
संस्कृत विभाग,
श्री प्रतापसिंह बारहठ राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
शाहपुरा, (भीलवाड़ा),
राजस्थान, भारत

हरमल रेबारी
विभागाध्यक्ष,
संस्कृत विभाग,
श्री प्रतापसिंह बारहठ राजकीय महाविद्यालय,
शाहपुरा, (भीलवाड़ा),
राजस्थान, भारत

प्रस्तावना

आचार्य विश्वनाथ कविराज महाकाव्य का लक्षण करते हुए लिखते है कि जिसमें सर्गों का निबन्धन हो वह महाकाव्य कहलाता है। महाकाव्य में देवता या सद्वंशोत्पन्न क्षत्रिय जिसमें धीरोदात्तादि गुण विद्यमान हो ऐसा एक नायक होता है। कहीं एक वंशोद्भव सत्कुलीन एकाधिक राजा भी नायक होते हैं –

'सर्गबन्धो महाकाव्यो तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपिवा।।'[1]

शृङ्गार वीर अथवा शान्त में से एक कोई एक रस अंगी होता है तथा सभी अंग होते हैं। सभी नाटक सन्धियाँ होती हैं। कथावस्तु ऐतिहासिक या लौकिक सज्जनाश्रययुक्त होती है। धर्मार्थकाममोक्षादि पुरुषार्थ चतुष्टय में से एक उसका फल होता है। प्रारम्भ में मंगलाचरण होता है जो नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक या वस्तुनिर्देशात्मक होता है। कहीं –कहीं पर खलनिन्दा व सज्जनों का गुण कीर्तन भी होता है।

सर्ग में एक ही छन्द हो परन्तु सर्गसमाप्ति पर छन्दपरिवर्तन हो। सर्ग आठ से अधिक हो तथा न अधिक छोटे व न ही अधिक बड़े हो। कहीं – कहीं सर्गों में अनेक छन्द भी मिलते हैं। सर्गान्त में भावी सर्ग की कथा की सूचना हो। इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष,अन्धकार, दिन, प्रभात, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतुएँ, वन, समुद्र, सम्भोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए। महाकाव्य का नामकरण कवि के नाम से या चरित्र के नाम से अथवा चरित्र नायक के नाम से होना चाहिए। कहीं इसके अतिरिक्त भी नाम होता है। सर्गों की वर्णनीय कथा से सर्गों का नामकरण भी किया जाना चाहिए। उक्त लक्षणों के आधार पर पं. गुलाबचन्द्र चुलेट 'पाटलेन्दु' द्वारा रचित महारथी ''श्री कर्णचरितामृतम्'' महाकाव्य सर्वांगपूर्ण है। समीक्ष्यमहाकाव्य का महाकाव्यत्व निम्नानुसार प्रत्यक्ष सिद्ध है।

शोधोद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य पं. श्री गुलाबचन्द्र चुलेट 'पाटलेन्दु' द्वारा प्रणीत महारथी 'श्रीकर्णचरितामृतम्' महाकाव्य को शास्त्रीय लक्षणों पर घटित करते हुए उसके महाकाव्यत्व को सिद्ध करना है।

सर्गबद्धता

''सर्गबद्धो महाकाव्यो..... '' के अनुसार ''महारथी'' की सर्गबद्धता स्वतः प्रमाणित है। परिशीलनीय महाकाव्य की कथावस्तु स्रग्मुक्तेव 21 सर्गों में सुगुम्फित है। यद्यपि काव्यशास्त्रीयाचार्यों द्वारा सर्वांगपूर्ण महाकाव्यार्थ न्यूनातिन्यून अष्टसर्ग प्रतिबद्धता की अनिवार्य संरचना स्वीकार की गई है, परन्तु आधिक्य का विधि–निषेध कहीं पर भी गोचर नहीं होने से विश्वविश्रुत महाकाव्यों में अष्टाधिक सर्ग ही प्रायः प्राप्त होते हैं, यथा – बुद्धचरितम् में 28 सर्ग, सौन्दरनन्दम् में 18 सर्ग, किरातार्जुनीयम् में 18 सर्ग, रघुवंशम् में 19 सर्ग, कुमारसम्भवम् में 17 सर्ग, शिशुपालवधम् में 20 सर्ग तथा नैषधीयचरितम् में 22 सर्ग उपलब्ध होते हैं। उक्त

महाकाव्यों की भाँति ही समीक्ष्य महाकाव्य की कथावस्तु 21 सर्गों में सुनिबद्ध है, जो इसके महाकाव्यत्व को प्रमाणित करती है।

नायकत्व

किसी भी महाकाव्य में एक नायक का होना परमावश्यक माना गया है। वह भी देवता हो अथवा कुलीन क्षत्रिय हो, जो कि धीरोदात्त आदि गुणों से युक्तहो। महारथी ''श्री कर्णचरितामृतम्'' महाकाव्य का नायक स्वयं कर्ण है जो क्षत्रिय वंश प्रवर्तक भगवान् भास्कर एवं कुन्ती से समुद्भूत है। कुमारी कुन्ती को भगवान् सूर्य ने वरदान दिया था कि समस्त राजाओं पर विजय प्राप्त करने वाला और महारथियों में त्रास उत्पन्न करने वाला दानवीर कर्ण तुम्हारे कर्ण (कान) से उत्पन्न होगा–

''समस्तराज्ञां तरसा विजेता, संत्रासिता सर्व महारथानाम्।
प्रदानवीरो भविता सुभद्रे! कर्णेन कर्णः प्रबलस्तनूजः।।''[2]

नौ माह व्यतीत होने पर दसवें माह में वसन्तकाल सम्प्राप्ति पर कुन्ती ने कान (कर्ण) से कवचावृत अंगों वाला, रत्नमण्डित कुण्डलों से विभूषित, सूर्य की आभा से मण्डित कुमार (कर्ण) को जन्म दिया –

''कर्णेन कुन्ती सुषुवे कुमारी,
सूर्यप्रभं सत्कवचाऽऽवत्तांगम्।
रत्नोल्लासत्कुण्डल–भूषिताऽऽस्यम्,
कुमारकल्पं प्रथमं कुमारम्।।''[3]

महाभारत युद्ध से पूर्वकुन्ती स्वयं कर्ण को उसके जन्म विषयक वृत्तान्त सुनाती हुई कहती है कि तुम्हारी जन्मदात्री पृथा मैं ही हूँ। राधिका (राधा) तेरी जननी नहीं है। अधिरथ भी तेरे जनक नहीं है, तेरे जनक तो गगनमणि स्वयं सूर्यनारायणहै –

''अहमिहाऽस्मि पृथा तव जन्मदा,
न जननी तव सम्प्रति राधिका।
अधिरथोऽपि तथा जनको न ते,
गगनमंजुमणिश्च पिता स्वयं।।''[4]

श्रीकृष्णपरामर्शः नामक षोडशसर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपने मुखारविन्द से कर्ण को कहते है कि हे कौन्तेय! (कर्ण!) तुम सूर्यपुत्र हो। न तो तुम राधापुत्र हो और न ही सूतपुत्र हो –

''सूर्यपुत्रोऽसि कौन्तेय! न राधेयो न सूतजः।।''[5]

इस प्रकार सूर्यसूनु कर्ण सत्कुलोत्पन्न देवपुत्र क्षत्रियवंशी पात्र है जो सर्वथा महाकाव्य का नायक होने योग्य है। अतः महाकवि पाटलेन्दु ने अपने महाकाव्य के नायक का चयन शास्त्रीय मानदण्डों के आधार पर उचित ही किया है।

रसत्व

काव्य में रस तत्त्व को प्रायः सभी आचार्यों ने अत्यधिक महत्त्व दिया है। रस के बिना काव्यानन्द की प्राप्ति सम्भव नहीं मानी गयी है। अतः आचार्यों ने महाकाव्य के लक्षण बताते हुए एक महाकाव्य में श्रृंगार, वीर अथवा शान्त में से एक रस का अंगी रस होना परमावश्यक है। अन्य रस अंग अर्थात् गौण होते हैं।[6]

प्रस्तुत महाकाव्य का रस वीररस और अन्य रस गौण हैं। युद्धभूमि में कर्ण के तेज का वर्णन करते हुए महाकवि ने उसके हाथों को सूर्य की किरणों के समान प्रखर तेजस्वी माना है। जैसे सूर्य की किरणें महाजल को सूखा देती है, उसी प्रकार कर्ण अपने हाथों से युद्धभूमि में अनेक योद्धाओं का विनाश कर रहा है। शस्त्ररूपी तरंगों की आभा से युक्त मद्रसैन्य सरोवर शान्त हो गया है –

''कर्णसूर्यकराक्रान्तं, नश्यद् भटमहाजलम्।
शान्तशस्त्रतरंगाभं, मद्रसैन्यसरोऽभवत्।।''[7]

अंग रसों में श्रृंगार, करुण, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शाान्त आदि का प्रमुखता प्रयोग हुआ है। 'सम्भवः' नामक प्रथमसर्गमें कुन्ती–सूर्य मिलन प्रसंग[8] में, वैवाहिकम् नामक सप्तमसर्ग[9] में तथा 'कान्दर्पिकम्' नामक अष्टमसर्ग में श्रृंगार रस का उत्कृष्ट चित्रण अवलोकनीय है –

''अनन्ताराकृतकामकेलिः, सन्तोषितानेकवधूप्रपंचः।
सुरैर्निपीताऽमृततत्वसारः, क्षीणत्वमंगेऽतितरां बिभर्ति।।''[10]

'सूर्यसायुज्यम्' नामक इक्कीसवें सर्ग में कर्ण के वीरगति को प्राप्त होने पर युधिष्ठिर के विलाप में करुण रस की उत्कृष्ट अभिव्यंजना अभिव्यंजना है।[11] इसी प्रकार 'दिग्विजयः', 'पाण्डवपराजयः' 'सूर्यसायुज्यम्' आदि सर्गों में युद्धों के वर्णन में रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत आदि रसों का यत्र तत्र सूक्ष्म चित्रण हुआ है। 'दिव्याऽस्त्रिकम्' नामक पन्द्रहवें सर्ग में कर्ण भगवान् परशुराम के आश्रम में दिव्यास्त्र प्राप्ति हेतु शान्तरस की प्रतीति हो रही है –

''सच्छाद्वलाकीर्ण विचित्रमार्गम्,
महर्षिभिः सेवितमात्तयोगैः।
ऊँ भूर्भुवःस्वध्वर्निभिः प्रपूर्णं, रामाश्रमं,
ब्रह्ममयं प्रपेदे।।[12]

इस प्रकार एक महाकाव्य में सभी रसों की काव्यशास्त्रियों द्वारा अपेक्षित निकषोपल पर यह महाकाव्य खरा प्रतिपादित हुआ है।

नाटक सन्धियाँ

कविराज विश्वनाथ के अनुसार एक सफल महाकाव्य में समस्त नाटक सन्धियों का होना आवश्यक है।[13] एक प्रयोजन में अन्वित कथांशों के अवान्तर सम्बन्धों को 'सन्धि' कहते है।[14]नाटक सन्धियाँ पाँच मानी गई है – मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और उपसंहृति, यथा –

''अर्थप्रकृतयः पंच पंचावस्था समन्विता।
यथा संख्येन जायन्ते, मुखाद्या पंचसन्धयः।।''[15]

मुखसन्धि

जहाँ अनेक अर्थ और अनेक रसों के व्यंजक बीज (अर्थप्रकृति) की उत्पत्ति प्रारम्भ नामक अवस्था के संयोग से हो, उसे मुखसन्धि कहते हैं।[16]'महारथी' के प्रथम सर्ग में सूर्य–कुन्ती संवाद में तथा पंचमसर्ग में मुखसन्धि के प्रायः सभी अंगों का सुन्दर निर्वाह हुआ है।

प्रतिमुखसन्धि

जहाँ मुखसन्धि में निवेशित फल प्रधान उपाय का विकास ''बिन्दु'' और ''प्रयत्न'' के अनुगम द्वारा कुछ लक्ष्य तथा कुछ अलक्ष्य हो उसे प्रतिमुख सन्धि कहते है।[17] 'प्रातिद्वन्द्विकम्' नामक छठेसर्गमें प्रतिमुखसन्धि है।

गर्भ

जहाँ पूर्व सन्धियों में कुछ–कुछ प्रकट हुए फलप्रधान उपाय का ह्रास और अन्वेषण से युक्त बार – बार विकास हो, उसे गर्भ सन्धि कहते है।[18] कर्ण का राज सभा में पौरुष प्रदर्शन कर अर्जुन से युद्ध करने की इच्छा

प्रकट करना किन्तु भीमद्वारा कहना किसूतपुत्र राजपुत्र अर्जुन से युद्ध कैसे कर सकता है?[19]तब दुर्योधन द्वारा कर्ण की प्रशंसा करना व उसको अंगराजत्व प्रदान करना तथा कर्ण का 'अंगराजत्व' स्वीकारने में उपाय का अनेकधा ह्रास तथा अन्वेषण होता है। अतः यहाँ गर्भ सन्धि है।

विमर्शसन्धि

जहाँ बीजार्थ गर्भसन्धि की अपेक्षा अधिक विकसित हो, किन्तु क्रोधादि के कारण विघ्नयुक्त हो, उसे विमर्शसन्धि कहते है।[20] इन्द्र द्वारा भिक्षुक रूप में कवच कुण्डल माँगना, श्रीकृष्ण द्वारा कर्ण को उसके वास्तविक माता पिता का रहस्य बताना व पाण्डवों के पक्ष से युद्ध करने का प्रलोभन देना। अन्त में कुन्ती द्वारा पाण्डवों के जीवित रहने की वरदान याचना में विमर्शसन्धि है।

उपसंहृतसन्धि

बीज से युक्त मुखादि सन्धियों में बिखरे हुए अर्थों का जहाँ एक प्रधान प्रयोजन में यथावत् समन्वय साधित किया जावे उसे निर्वहणसन्धि या उपसंहृतसंन्धि कहते है।[21] महाकव्य के अन्त में मित्र दुर्योधन के पक्ष में युद्ध करते हुए प्राणोत्सर्ग कर कर्ण की सूर्यसायुज्य प्राप्ति में उपसंहृतसंन्धि है।

इस प्रकार महारथी ''श्री कर्णचरितामृतम्'' महाकाव्य में समस्त नाटक सन्धियों का सुष्टु प्रयोग निर्धारित स्थानों पर यथावसर दर्शनीय है।

कथावस्तु

आचार्य कविराज विश्वनाथ के अनुसार कथावस्तु ऐतिहासिक या लोक में प्रसिद्ध सज्जनाश्रयसम्बन्धिनी होनी चाहिए। धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्ष इन चतुवर्गों में से एक उसका फल होना चाहिए–

''इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।।''[22]

दशरूपककार ने कथावस्तु को प्रख्यात, उत्पाद्य तथा मिश्र इस प्रकार तीन भागों में विभाजित किया है।[23] इनमें से प्रख्यात नामक कथावस्तु ऐतिहासिक प्रकार की कथावस्तु है। 'महारथी' की कथावस्तु भी इतिहासोद्भव है। अतः इसकी कथावस्तु 'प्रख्यात' नामकविभाग में आती है। यद्यपि पुराणों एवं अन्य दृश्य – श्रव्य साहित्य में यत्र तत्र कर्णविषयक कथावस्तु प्रकीर्ण रूप में विद्यमान है, किन्तु वस्तुतः इसका मूलाधार तो महाभारत ही है।

महारथी की कथावस्तु का प्रारम्भ प्रथम सर्ग में कुन्ती के जन्म से लेकर कुन्ती द्वारा ऋषि दुर्वासा की सेवा, ऋषि के प्रसन्नता पर दिव्य वर प्राप्ति एवं सूर्यसमागम से क्रमिक विकास होता है जो सर्गान्त में कर्ण के जन्म से अपनी मूलधारा में आ जाती है।

पुरुषार्थचतुष्टय

एक महाकाव्य में धर्मार्थकाममोक्षादि चतुर्वर्ग से न्यूनातिन्यून एक की फलप्राप्ति आवश्यक मानी गई है। महारथी महाकाव्य में धर्मार्थकामादि त्रिवर्ग की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। कर्ण प्रतिदिन प्रातःकाल माता राधा तथा पिता अधिरथ को प्रणाम कर त्रिवर्ग की साधना करता है –

''राधामधिरथञ्चैव, सर्वतः प्रथमं मुदा।
प्रणनाम सदा प्रातः, त्रिवर्गं सिषिवे सदा।।''[24]

'धारणाद् धर्म इत्याहुः' के अनुसार धर्म जीवन का मूल आधार है। इसी से मनुष्य को प्रेरणा व प्रकाश उपलब्ध होता है। यही धर्म जीवन की गति, विधि, और प्रगति में सहायक होता है। विद्वानों द्वारा हृदयंगम रागद्वेष से रहित विषय को धर्म कहा गया है। महारथी कर्ण उसी धर्म की अपने जीवन में अनवरत साधना कर रहा है। धर्म साधनार्थ वह महर्षियों और विद्वानों से रुचिर कथाओं का श्रवण करता है।विप्रों को मोदक एवं पायसादि समन्वित भोजन कराता है।[25] बालकों, वृद्धों, अनाथों, अतिथियों और अबलाओं को घृतयुक्त अन्न से तृप्त करता है।[26] गायों, बैलों, बछड़ों, आदि की रक्षा करता है तथा विद्वान् पुरुषों का सत्कार करते हुये उन्हें विविध उपहार प्रदान करता है।[27] प्रसन्नचेता कर्ण यज्ञशालाओं में हव्यपायस द्वारा अग्नि में आहुति प्रदान करता है –

''ज्वलन्तो यज्ञशालासु, प्रसन्नाः हव्यपायसैः।
तेजः प्रवर्द्धयामासुः, राधेयस्याऽस्य वह्नयः।।''[28]

धर्म के मूल स्रोतों में वेद का स्थान मूर्धन्य माना गया है। चारों वेद धर्म के निर्णय में परमप्रमाण है। महर्षि मनु ने भी वेद, स्मृति, सदाचार, तथा अपने मन की रुचि इन चार को धर्म के साक्षात् प्रमाण बताया है।[29]कर्ण की राजसभा भी स्वर्ग के समान वेदमन्त्रों के पाठ से मनोहर एवं सर्व सम्पत्तियों से समृद्ध थी।[30] वह स्वयं प्रतिदिन गंगा के निर्मल जल में वैदिक वरुणसूक्तादि के मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करता हुआ भगवान् भास्कर को अर्घ्य प्रदानपूर्वक पूजा कर धर्म की साधना करता है –

''प्रत्यहं देवनद्याश्च, कण्ठदध्नेऽतिनिर्मले।
वैदिकैर्वारुणैर्मन्त्रैरसो स्नानमचिकरत्।।''[31]

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि अच्छी प्रकार आचरण में लाये हुए दूसरे के धर्म से अपना गुणरहित भी अपना धर्म अत्युत्तम है। स्वधर्म का पालन करते हुये मरना भी श्रेष्ठ है और दूसरे का धर्म भयदायक होता है –

''श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः, परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः।।''[32]

महारथीकर्ण यह जानते हुए भी कि वह कुन्तीपुत्र है। पाण्डव उसके ही अनुज हैं।[33]श्रीकृष्ण के यह समझाने पर कि यदि तुम पाण्डवों के पक्ष से महाभारत का युद्ध करोगे तो विजय होने पर पाण्डवों में ज्येष्ठ होने से तुम ही राजा बनोगे। तुम्हारा भाई युधिष्ठिर सेवक के समान छत्र पकड़ेगा, भीम अंगरक्षक, अर्जुन प्रहरी, तथा नकुल सहदेव चामर धारण करेंगे। पांचाली द्रौपदी भी छाया की भाँति तुम्हारा ही अनुसरण करेगी –

''धर्मराजश्च ते भ्राता, छत्रग्राही भविष्यति।
भीमोऽङ्गरक्षकश्चाऽपि, प्रहरी चाऽर्जुनस्तव।।
नकुलो सहदेवश्च, चामरे ते धरिष्यतः।
पांचाली चाऽपि छायेव, त्वामेवाऽनुगमिष्यति।।''[34]

इस प्रकार प्रलोभन का निमन्त्रण प्रस्तुत होने पर भी कर्ण अपने मैत्रीधर्म से विचलित न होते हुए श्रीकृष्ण को समझाता है किजिस दुर्योधन के सम्पर्क से सम्पूर्ण उत्तर जगत् 'सूतपुत्र' संज्ञा को त्याग कर उसे 'सूर्यपुत्र' नाम से पुकारने लग गये हैं। दुर्योधन स्वयं भी उसे अंगराज, महाराज, राजराजा आदि सम्बोधनों द्वारा प्रेममय अमृत से स्नान कराता है ऐसा वह परममित्र उसके द्वारा कैसे त्याज्य है?[35] मित्र दुर्योधन पर घटाटोप विपत्ति

आने पर कर्ण ने उसका साथ न छोड़ कर अपने मित्र धर्म का निर्वहण किया है –

''अधुना तं विपत्तीनां, घटाऽऽटोपे उपस्थिते।
कथं त्यक्ष्यामि वार्ष्णेय! कालानलभयंकरे।।''[36]

'काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये' के अनुसार प्रत्येक काव्य अर्थ प्रदान करने में समर्थ होता है। अतः समीक्ष्य महाकाव्य भी कवि के द्वितीय पुरुषार्थ की सिद्धि में निश्चित रूप से समर्थ है। साथ ही सम्भव, वैवाहिक एवं कान्दर्पिक आदि सर्गों निहित श्रृंगार वर्णन में काम नामक तृतीय वर्ग की भी सिद्धि सहज ही हो जाती है, किन्तु महाकाव्य के मूल में चतुर्वर्ग में से धर्म की प्राप्ति प्रमुख है जो कि सम्पूर्ण महाकाव्य में महारथी कर्ण के व्यक्तित्व से सहज बोधगम्य है।

मंगलाचरण

किसी भी महाकाव्य का प्रारम्भ मंगलाचरण से किया जाना चाहिए।[37] मंगलाचरण काव्य की निर्विघ्न सम्पूर्णता के लिए आवश्यक माना गया है। मंगलाचरण के तीन प्रकार माने गये हैं– नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक और वस्तुनिर्देशात्मक।

नमस्कारात्मक

काव्यारम्भ में कवि जब अपने आराध्य की स्तुति वन्दना आदि के द्वारा नमस्कार कर स्वयं के कल्याण की कामना करता है तो वहाँ नमस्कारात्मक मंगलाचरण माना जाता है। 'रघुवंशमहाकाव्य' में महाकवि कालिदास ने पार्वतीपरमेश्वर के नमस्कार में नमस्कारात्मक मंगलाचरण का विधान किया है –

''वागर्थाविव सम्पृक्तौ, वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे, पार्वतीपरमेश्वरौ।।''[38]

आशीर्वादात्मक

जब कवि ग्रन्थ के प्रारम्भ में सुविज्ञ श्रोताओं, दर्शकों तथा पाठकों के कल्याण हेतु उन्हें आशीर्वाद देता है अथवा ईश्वर से उनके कल्याण की कामना करता है तो वहाँ आशीर्वादात्मक नामक मंगलाचरण होता है। महाकवि कलिदास की अमर कृति विश्वप्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में कवि अष्टमूर्तिभगवान् शिव से दर्शकों के मंगल की कामना करते है, अतः वहाँ आशीर्वादात्मक मंगलाचरण है।[39]

वस्तुनिर्देशात्मक

कहीं–कहीं काव्य का प्रारम्भ वस्तुनिर्देश के साथ भी होता है।[40] किरातार्जुनीयम्, नैषधीयचरितम्, कुमारसम्भवम् आदि अनेक महाकाव्यों का प्रारम्भ वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण से हुआ है।

महारथी महाकाव्य का मंगलाचरण नमस्कारात्मक श्रेणी का है। मंगलाचरण में कवि उस सर्वज्ञ अखिलपरमात्मतत्त्व को प्रणाम करता है जिसको विद्वान् कवियों ने सदैव प्रणाम किया है–

''सर्वज्ञं परमात्मतत्वमखिलं बिम्बाधरं श्रीधरं,
सक्षात्कल्पमहीरुहं प्रणमतां विद्वत्कवीनां सदा।
वीणावादनतत्परं श्रुतिपरं सत्यं परस्मात्परं,
चन्द्रास्यं सुतरामहर्निशमहो दिव्यं महो धीमहि।।''[41]

सर्गविधान

महारथी महाकाव्य पूर्णतः सर्गबद्ध महाकाव्य है। इसमें इक्कीस सर्गों में सम्पूर्ण कथावस्तु को निबद्ध किया गया है। सर्गों का आकार न बहुत दीर्घ और न ही अतिलघु कलेवर है। प्रत्येक सर्ग का नामकरण भी किया गया है। प्रथम सर्ग 'सम्भव' में 72 पद्य,द्वितीय 'सुरक्षणम्' में 72 पद्य, तृतीय 'विरहणम्' में 40 पद्य, चतुर्थ 'स्वाध्यायः' में 50 पद्य, पंचम 'प्रतिद्वन्दिकम्' में 66 पद्य, षष्ठ 'अंगराजत्वम्' में 73 पद्य, सप्तम 'वैवाहिकम्' में 66 पद्य, अष्टम 'कान्दर्पिकम्' में 60 पद्य, नवम सौरकौन्तेयत्वम्' में 65 पद्य, दशम 'पांचालिकम्' में 53 पद्य, एकादश 'कालिंगकम्' में 62 पद्य, द्वादश राजसूयिकम्' में 56 पद्य, त्रयोदश 'पारिवारिकम्' में 62 पद्य, चतुर्दश 'दिग्विजयः' में 139 पद्य, पंचदश सर्ग 'दिव्याऽस्त्रिकम्' में 75 पद्य, षोडश सर्ग श्रीकृष्णपरामर्शः' में 122 पद्य, सप्तदश सर्ग 'इन्द्रभिक्षुः' में 82 पद्य, अष्टादश सर्ग ' मातृवात्सल्यम्' में 61 पद्य, एकोनविंश सर्ग 'वैक्रान्तिकम्' में 63 पद्य, विंशतितम सर्ग 'पाण्डवपराजयः' में92 पद्य, तथा एकविंशतितम सर्ग 'सूर्यसायुज्यम् में 115 पद्य हैं।

प्रत्येक सर्ग के अन्त में भावीसर्ग की सूचना दी गई है। प्रतिसर्ग में भिन्न–भिन्न छन्दो विधान है,यथा मंगलाचरण के पश्चात्प्रथम सर्ग में उपजाति छन्द, द्वितीय सर्ग में अनुष्टुप, तृतीयसर्ग में द्रुतविलम्बित, चतुर्थ में पुनः उपजाति इसप्रकार से शार्दूलविक्रीडितम्, मालिनी, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा जैसे छन्दों का कुशलता से प्रयोग किया है। सर्गान्त में सर्वत्र प्रायः शार्दूलविक्रीडितम् का प्रयोग किया है।

संध्या आदि विविध वर्णन

काव्यशास्त्रीय निर्देशानुसार महारथी 'श्रीकर्णचरितामृतम्'महाकाव्य में सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रभात, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतुएँ, वन, समुद्र, सम्भोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, और अभ्युदय आदि का यथा सम्भव सांगोपांग वर्णन किया गया है।

प्रथमसर्ग में कुन्ती ऋषि दुर्वासा से वरप्राप्त्युपरान्त प्रातःकालीन वेला में उदीयमान भगवान् सूर्यनारायण के दर्शन करती है । कवि उस दृश्य का महाकाव्य में अत्यन्त सुन्दर वर्णन करता है। गगन में पूर्व दिशा में सुवर्णवर्णीय सिंहाकृति अन्धकार रूपी गज को तीक्ष्ण किरणरूपी दाढों से पकड़कर उदयाचल के अग्रभाग पर आरूढ हो रही है।कवियों की दिव्य बुद्धियों को प्ररित करने वाले सूर्य के दिव्य तेज को कुन्ती ने देखा –

''तमोद्विपं तीक्ष्णकरैर्निहत्य,
आरूढमुच्चैरुदयाचलाग्रम्।।
सिंहाकृति व्योम्नि समुच्छलन्तं
प्राच्यांसमुत्तप्तसुवर्णवणम्।
प्रचोदकं दिव्यधियः कवीनां,
भर्गो वरेण्यं सवितुर्ददर्श।।''[42]

महारथी में द्वितीय सर्ग में अल्प किन्तु सुन्दर वर्णन किया गया है।[43] इसी प्रकार ग्यारहवें सर्ग में मालिनी नामक नगरी का भी वर्णन किया है।[44] सम्भव, वैवाहिक एवं कान्दर्पिक आदि सर्गों में विहित श्रृंगार वर्णन में विवाह, सम्भोग व विप्रलम्भ का वर्णन कियागया है। दिग्विजय नामक चतुर्दश सर्ग में युद्ध के साथ–साथ यात्रा का सुन्दर वर्णन किया गया है। नाना शस्त्राऽस्त्रों से युक्त गज, अश्व, रथ एवं पैदल सैनिकों से युक्त चतुरंगिणी सेना सुसज्जित हुई।[45] वह सेना काम्पिल्य नगर होती हुई सरयू के तट पर सूर्यवंशी

राजाओंकी राजधानी कौशलपुर (अयोध्या नगर) को प्राप्त हुई।[46] इसी प्रकार नवें पन्द्रहवें तथा सत्रहवें सर्गों में यथा सम्भवयज्ञों का सुन्दर वर्णन किया गया है –

''ज्वलन्तो यज्ञशालासु, प्रसन्नाः हव्यपायसैः।
तेजः प्रवर्द्धयामासुः, राधेयस्याऽस्य वह्नयः।।''[47]

एक श्रेष्ठ महाकाव्य में जिस प्रकार के वस्तुवर्णन की अपेक्षा की जाती है, महारथी 'श्री कर्णचरितामृतम्' महाकाव्य में उन सब का सुन्दर वर्णन किया गया है।

महाकाव्य का नामकरण

महाकाव्य का नामकरण कवि के नाम से या चरित्र के नाम से अथवा चरित्रनायक के नाम से होना चाहिए।[48] अतः महाकवि पाटलेन्दु ने समीक्ष्य महाकाव्य का नामकरण उसके नायक कर्ण के आधार पर महारथी 'श्रीकर्णचरितामृतम्' रखा जो सर्वथा संगत है।

सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम रखा जाना चाहिए।[49] महारथी'श्रीकर्णचरितामृतम्' महाकाव्य में कवि ने प्रत्येक सर्ग का नामकरण वर्णित कथानुसार ही किया है जो क्रमशः अधोविन्यस्त है –

1 'सम्भवः'2 'सुरक्षणम्' 3 'विरहणम्' 4 'स्वाध्यायः' 5 'प्रतिद्वन्दिकम्'6 'अंगराजत्वम्' 7 'वैवाहिकम्' 8 'कान्दर्पिकम्' 9 सौरकौन्तेयत्वम्' 10 'पांचालिकम्' 11 'कालिंगकम्'12 राजसूयिकम्' 13 'पारिवारिकम्' 14 'दिग्विजयः' 15 'दिव्याऽस्त्रिकम्'16 श्रीकृष्णपरामर्शः' 17 'इन्द्रभिक्षुः' 18 'मातृवात्सल्यम्' 19 'वैक्रान्तिकम्' 20 'पाण्डवपराजयः' और 21 'सूर्यसायुज्यम् है।

निष्कर्ष

इस प्रकार महारथी 'श्रीकर्णचरितामृतम्' महाकाव्य एक सर्वांगपूर्ण महाकाव्य है जो काव्यशास्त्रीय निकषोपल पर शतप्रतिशत खरा उतरता है । सर्गबद्धता, नायकत्व, रस, नाटकसन्धियाँ, कथावस्तु, मंगलाचरण, छन्दोविधान पुरुषार्थ–चतुष्टय, प्रकृतिचित्रण, अलंकारसौष्ठव, चरित्रचित्रण, महाकाव्य का नामकरण, संध्या सूर्योदय आदि का मनोहर चित्रण किया गया है। महाकाव्य का नायक महारथी कर्ण महाभारत में चिर उपेक्षित रहा है, किन्तु समीक्ष्य महाकाव्य में उसके उदात्त स्वरूप को निष्पक्षरूप से समुद्घाटित किया है। इस प्रकार समग्र समीक्षोपरान्तमहारथी 'श्रीकर्णचरितामृतम्' महाकाव्य के महाकाव्यत्व में अल्प भी सन्देह करना व्यर्थ काल यापन करना है।

अन्त टिप्पणी

1. *साहित्यदर्पण 6/313, विश्वनाथ, चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी–1 वर्ष 1957*
2. *महारथी 'श्री कर्णचरितामृतम्' 1/65 गुलाबचन्द्र चुलेट,दिग्विजय प्रकाशन जयपुर प्रकाशन वर्ष 1990*
3. *वही 1/70*
4. *वही 18/12*
5. *वही 16/60*
6. *साहित्यदर्पण 6/317विश्वनाथ,चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी–1 वर्ष 1957*
7. *महारथी 'श्री कर्णचरितामृतम्' 14/62 गुलाबचन्द्र चुलेट, दिग्विजय प्रकाशन जयपुर प्रकाशन वर्ष 1990*
8. *वही 1/57*
9. *वही 7/22*
10. *वही 8/48*
11. *वही 21/31*
12. *महारथी'श्रीकर्णचरितामृतम्' 15/25*
13. *साहित्यदर्पण 6/317 विश्वनाथ, चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी–1 वर्ष 1957*
14. *दशरूपकम् 1/23 धनंजय, साहित्य भण्डार, मेरठ वर्ष 1997*
15. *वही 1/22, 23*
16. *वही 1/24*
17. *वही 1/30*
18. *वही 1/36*
19. *महारथी 'श्री कर्णचरितामृतम्' 5/57 गुलाबचन्द्र चुलेट, दिग्विजय प्रकाशन जयपुर प्रकाशन वर्ष 1990*
20. *दशरूपकम् 1/43धनंजय, साहित्य भण्डार, मेरठ वर्ष 1997*
21. *वही 1/48, 49*
22. *साहित्यदर्पण 6/318 विश्वनाथ, चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी–1 वर्ष 1957*
23. *दशरूपकम् 1/15धनंजय, साहित्य भण्डार, मेरठ वर्ष 1997*
24. *महारथी 'श्री कर्णचरितामृतम्' 9/1 गुलाबचन्द्र चुलेट, दिग्विजय प्रकाशन जयपुर प्रकाशन वर्ष 1990*
25. *वही 9/19*
26. *वही 9/20*
27. *वही 9/21*
28. *वही 9/22*
29. *मनुस्मृति 2/12महर्षि मनु,जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, प्रकाशन वर्ष 2009*
30. *महारथी 'श्री कर्णचरितामृतम्' 9/23 गुलाबचन्द्र चुलेट, दिग्विजय प्रकाशन जयपुर प्रकाशन वर्ष 1990*
31. *वही 9/24*
32. *श्रीमद्भगवद्गीता 3/35 वेदव्यास, गीताप्रेस, गोरखपुर, प्रकाशन वर्ष 2006*
33. *महारथी 'श्री कर्णचरितामृतम्' 16/60 गुलाबचन्द्र चुलेट, दिग्विजय प्रकाशन जयपुर प्रकाशन वर्ष 1990*
34. *वही 16/63–64*
35. *वही 16/100–101*
36. *वही 16/106*
37. *साहित्यदर्पण 6/319 विश्वनाथ, चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी–1 प्रकाशन वर्ष 1957*
38. *रघुवंशमहाकाव्य 1/1 कालिदास, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रकाशन वर्ष 2008*
39. *अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/1 कालिदास, मोती लाल बनारसी दास, नई दिल्ली– प्रकाशन वर्ष 1995*
40. *काव्यादर्श 1/14दण्डी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी–1 वर्ष 1996*
41. *महारथी 'श्री कर्णचरितामृतम्' 1/1 गुलाबचन्द्र चुलेट, दिग्विजय प्रकाशन जयपुर प्रकाशन वर्ष 1990*
42. *वही 1/49, 50*
43. *वही 2/45*
44. *वही 11/34*
45. *वही 14/9*
46. *वही 14/26*
47. *वही 9/22*
48. *साहित्यदर्पण 6/324विश्वनाथ, चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी–1 वर्ष 1957*
49. *वही 6/325*